
 प्रवचन-5 वचनामृत-36 से 39

वचनामृत 36 वाँ बोल (चल रहा है)। सादी भाषा है परन्तु अन्दर गहराई में रहस्य है। जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है... क्या कहते हैं? यह जानने-देखने का यह जो व्यापार है (अर्थात्) उपयोग, जो कि प्रथम पर तरफ है, उसे अन्तर में मोड़ना चाहता है। आहा...हा...! परन्तु अन्तरंग रुचि को नहीं पलटता,... क्या कहते हैं? (कि) उपयोग को पलटाना चाहता है कि पर तरफ से हटकर अन्दर में आना है परन्तु रुचि को पलटाता नहीं है। रुचि अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है; इसकी रुचि करता नहीं और उपयोग को पलटना चाहता है (तो) वह उपयोग नहीं पलटेगा। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहा...हा...!

रुचि पलटता नहीं है (अर्थात्) अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान, इसका पोषाण और रुचि करता नहीं और उपयोग को पलटना (चाहता है), अर्थात् जाननेरूप भाव को पर से (पलटकर) स्व में लाना-पलटना चाहता है परन्तु रुचि किये बिना वह पलटेगा नहीं। 'रुचि अनुयायी वीर्य' अन्तर आनन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप इसकी इसे रुचि और पोषाण हो तो उपयोग स्व में से अन्दर में जाये। पर से (हटकर) स्व में जाये लेकिन रुचि को ही नहीं पलटेगा तो उसका उपयोग पलट सकेगा नहीं। सूक्ष्म बात है। आहा...हा...! अब इसमें

बाहर का क्या करना? और कहाँ जाना, सारे दिन ये धन्धा-पानी और व्यापार... आहा...हा...!

सारा दिन... केशवलालभाई कहते थे कि सारा दिन इस पाप में पड़े हैं। यह तो दूसरा प्रकार है, भगवान! यहाँ तो जिसको जन्म-मरण का (अन्त लाना हो उसके लिये बात है)। क्योंकि यह देह छूटने पर कहीं न कहीं जाना तो है। देह छूट जायेगी परन्तु आत्मा छूटेगा? आत्मा तो नित्य है, तो जायेगा कहाँ? देह छूटने के पश्चात् आत्मा तो नित्य है, वह जायेगा कहाँ? इसका विचार आया है? कि यह देह छूटने के पश्चात् मैं कहाँ जाऊँगा? कहाँ अवतार लूँगा? कहाँ मेरी दशा होगी? ऐसा विचार आये, तब तो पर तरफ का उपयोग है, उसे स्व तरफ लाने का उद्यम करेगा परन्तु रुचि नहीं पलटेगी तो स्व में उपयोग जा सकेगा नहीं। आ...हा...हा...हा...! है?

उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। आ...हा...हा...! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान, उस तरफ की रुचि नहीं तो जानने-देखने के उपयोग को पलट नहीं सकता। वह बाहर में ही पलटा खाता रहेगा। राग-द्वेष और विकल्प और संकल्प-विकल्प, रति और अरति, शोक और दुःख (में ही पलटा खाता रहेगा) आहा...हा...! सूक्ष्म बात है प्रभु! **प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा।** कहो, धन्नलालजी!

अन्दर में रुचि होनी चाहिए। बाहर का जो रस लग गया है। सारा दिन उस रस के ही विकल्प आते रहते हैं, आ...हा...हा...! ऐसे आत्मा अन्दर ज्ञायक सत्तास्वरूप वस्तु है, इसकी रुचि होगी तो उपयोग को पलट सकेगा, तो जानने का उपयोग स्व के प्रति झुकेगा। आहा...हा...!

प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा। आत्मा की रुचि होगी (अर्थात्) यदि आनन्द और ज्ञान की (रुचि होगी) तो उसका वर्तमान व्यापार पर तरफ झुका है, वह स्व तरफ झुके बिना रहेगा नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है! क्या करना? यह बाहर का कुछ करना कि इसमें से कुछ हो सके ऐसा है? बाहर की तो धमाधम चलती है, बापू! अन्दर में उपयोग को पलटने का कार्य करना है। परन्तु इस उपयोग का पलटा कब हो? इसे अन्तर स्वभाव का माहात्म्य आये कि मैं एक आनन्द और सहजानन्द अनन्त गुण का पिण्ड हूँ। वह मेरी सत्ता और वह मेरा सत् और वही मेरा सत्त्व है। आत्मा सत् है और

अनन्त गुण उसका सत्त्व है। सत् का सत्त्व यह है।

वैसे तो पर्याय को भी सत्त्व कहा था। आया था न? छठी गाथा के भावार्थ में (आया था)। परन्तु वह एक समय की पर्याय का सत् है, और वस्तु है वह त्रिकाली सत् है। सत् का त्रिकाली सत्त्व अर्थात् गुण है। यह ज्ञान और आनन्द जिसके सत् का सत्त्व है, इसकी यदि रुचि होवे तो वह (उपयोग) पलट सकेगा। उपयोग का पलटा सहज हो जायेगा।

मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है। आहा...हा...! यह मार्ग की विधि का यथार्थ क्रम यह है। इसके बिना दूसरा करने जायेगा तो होगा नहीं। आहा...हा...! कठिन काम बहुत!

(जन्म-मरण करते-करते) देह को छोड़कर अनन्त काल बीता। आहा...हा...! त्रस की स्थिति में दो हजार वर्ष (सागर) रहेगा। क्या कहा? यह त्रस है—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, नारकी, देव, तिर्यच—पशु, ऐसे त्रस में दो हजार सागर ही रहेगा। इन दो हजार सागर में (मिले हुए) मनुष्यत्व में यदि कुछ नहीं किया (तो) निगोद में जायेगा। समझ में आया?

परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ने केवलज्ञान में देखकर कहा — प्रभु! तू एकेन्द्रिय में से निकलकर मुश्किल से तो त्रस में आया और इस त्रस में दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय के भव अधिक से अधिक करेगा तो दो हजार सागर तक करेगा, लेकिन फिर तो निगोद में जायेगा। यदि इस मनुष्य का कर्तव्य (अर्थात्) आत्मा का अनुभव नहीं किया, आत्मा की प्रतीति, विश्वास और अनुभव नहीं किया तो परिभ्रमण करते हुए निगोद में जायेगा। आहा...हा...! क्योंकि देह नष्ट होगी परन्तु आत्मा का तो कोई नाश होनेवाला नहीं है। तो (यह) देह (छूटने के) पश्चात् जायेगा कहाँ? जिसकी जिसको रुचि, उसमें उसका जन्म होगा। आहा...हा...हा...! कठिन बात है। जगत (के जीव) इस बाहर की महिमा में और बाहर के मोह में उलझ गया है। अन्तर वस्तु रह गयी। साधु हुआ तो भी अन्तर (वस्तु) रह गयी! अन्तर का माहात्म्य जो आना चाहिए, वह माहात्म्य आया नहीं। आहा...हा...!

वही (यहाँ कहते हैं) **मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।** उपयोग अर्थात् जानने-देखने का जो भाव है, वह तो अनादि से पर की ओर झुका हुआ है, उसे स्व तरफ

मोड़ना हो तो, चैतन्यस्वरूप क्या है? उसकी इसे रुचि होनी चाहिए और रुचि होगी तो उपयोग का पलटा होगा। भाषा समझ में आती है या नहीं? भाषा तो सब सादी, देशी (भाषा) है। भले गुजराती (है) परन्तु भाषा तो सादी है। आहा...हा...!

उपयोग को अन्दर पलटना हो तो (पहले) रुचि को पलट। सब जगह से रुचि उठा ले! और अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान (है) इसकी रुचि कर तो पर तरफ का उपयोग अन्दर में झुकेगा। यह मार्ग का क्रम है। इससे दूसरा क्रम करने जायेगा तो यह वस्तु मिलेगी नहीं। आहा...! ये 36 वाँ बोल हुआ।

‘मैं अबद्ध हूँ’, ‘ज्ञायक हूँ’, यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं; शान्ति नहीं मिलती, विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभाव में लीन होने पर, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्द का वेदन होता है॥37॥

37 वाँ (बोल)। ‘मैं अबद्ध हूँ’, ‘ज्ञायक हूँ’, यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं;... आहा...हा...! ‘समयसार’ 143 (142) नहीं 142 (गाथा) में कहा न? कि जिसको व्यवहार का (अर्थात्) पर्याय का, राग का पक्ष है, उसका तो हम निषेध करते ही आये हैं। परन्तु निश्चय स्वरूप जो आत्मा ज्ञायक और अबद्धस्वरूप है, इसकी हम बात करते हैं, परन्तु इसके पक्ष में—विकल्प में यदि खड़ा रहेगा तो उसको भी वस्तु की प्राप्ति नहीं होगी। व्यवहार का तो हम निषेध करते ही आये हैं। वहाँ 142 (गाथा) में (ऐसा कहा है)। पर्याय और राग का तो निषेध करते आये हैं। (क्योंकि) वह दृष्टि करने लायक नहीं है। परन्तु त्रिकाली ज्ञायक में दृष्टि करने पर ‘मैं अबद्ध और ज्ञायक हूँ’—ऐसा जो विकल्प अर्थात् राग उठता है, उससे क्या? उससे क्या? क्या संस्कृत है? ‘तत् किम्’ – संस्कृत में ऐसा है। ‘तत् किम्’—उससे क्या? बापू! आहा...हा...! ‘ज्ञायक हूँ’। सुबह (‘समयसार’ की) 14 वीं गाथा में ‘अबद्ध’ आया न? वहाँ अबद्ध हूँ (ज्ञायक हूँ) – ऐसा जो विकल्प है—राग, इसमें क्या प्रभु? वह अन्दर में आया नहीं। वह तो बाहर ही बाहर में घूमता रहता है। आहा...हा...!

काम बहुत कठिन लगे... ! और इसमें परदेश में कमाने में उलझ गये हो, आहा... ! 5-25 लाख की आमदनी हो, ... हो गया... ! मानो... ओहो...हो... ! मैं बढ़ गया ! भटकने में... (बढ़ा है) । एक शब्द ऐसा था, कहा था कि पैसा है, वह पुण्य से मिलता है। पुण्य के बिना प्रयत्न से नहीं मिलता। कितने ही ऐसे लोग देखे हैं... यहाँ तो लाखों का परिचय है। मुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली सब जगह व्याख्यान दिये हैं। बड़े-बड़े शहरों में सब जगह गये हैं। भोपाल में 40-40 हजार लोगों के बीच व्याख्यान दिया है। अन्दर का आत्मा इन बाहर की बातों में अटकने से अन्दर आत्मा वस्तु क्या है? इसका विचार करने का अवसर ही नहीं मिलता। हमें सूक्ष्म लगता है... हमें सूक्ष्म लगता है... हमें सूक्ष्म लगता है। आहा... ! ऐसा कहकर बाहर ही बाहर में उपयोग रहा करता है, परन्तु अन्दर जाने के लिये (उपयोग को अवकाश नहीं मिलता)। इस बाहर के माहात्म्य को देखकर मोहित हो गया है, उलझ गया है, पलटा खाता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं 'मैं अबद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ', यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं;... आहा...हा... ! व्यवहार भले ही तूने लक्ष्य में से छोड़ा और व्यवहार छुड़ाते आये हैं, परन्तु निश्चय में अबद्ध और ज्ञायकस्वरूप है, उसका भी यदि विकल्प और राग रहेगा (तो) उससे क्या? इससे तुझे आत्मा की प्राप्ति क्या होगी? इससे आत्मा भविष्य में नरक और निगोद में से नहीं निकल सकेगा। आहा...हा... ! इस विकल्प को तोड़कर (अन्दर में जा)। अबद्ध और ज्ञायक हूँ (—ऐसे) विकल्प में रहे तो शान्ति नहीं मिलती, जब विकल्प में रहे तो... आहा...हा... ! कहो! ज्ञायक और अबद्ध का विकल्प भी नुकसानकारक है।

यह कहा था न? 14 प्रकार के अन्तर परिग्रह हैं, 10 प्रकार के बाह्य परिग्रह हैं। शास्त्र में 24 प्रकार के परिग्रह का वर्णन है। समझ में आया? ये विकल्प से लेकर पैसा, मकान, स्त्री, कुटुम्ब आदि (मिलना), यह पुण्य का फल है, परन्तु है पाप! आहा... ! सिद्धान्त में लेख है कि 24 परिग्रह में लक्ष्मी, सोना—चाँदी, मणिरत्न (आते हैं)। ऐसे दस-दस करोड़वाले मनुष्य (देखे) हैं। जिनके घर में... अकेले 'सरदार शहर' में एक है। 'दीपचन्द सेठिया' थे न, उनके मामा। बहुत वर्ष पहले दस करोड़ रुपये। अभी तो उनकी कीमत (बहुत) बढ़ गयी होगी। पैसा इतना करोड़ में देखा हो, चाँदी और सोना में, परन्तु

(यहाँ) कहते हैं कि हम उसे परिग्रह कहते हैं और उसको हम पाप कहते हैं। आहा...हा...हा... !

ज्ञायक और अबद्ध – ऐसे विकल्प भी दुःखरूप हैं। परन्तु ये पैसे आदि मिले-करोड़, दो करोड़ और अरब की धूल मिली, इस पैसे को भगवान ने 'गोम्मटसार' में दस प्रकार के बाह्य परिग्रह में गिना है। तो पैसा आदि है, उसे पाप कहा है और पाप के स्वामी को पापी कहा है! अररर...! यह कठिन लगे...! लक्ष्मीचन्दभाई!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ, 24 प्रकार के परिग्रह कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग और परिग्रह। इसमें परिग्रह के 24 प्रकार कहे हैं। इसमें 14 (प्रकार के परिग्रह) तो अन्तर के हैं। मिथ्यात्व, राग, द्वेष, हास्य, रति आदि अन्तर परिग्रह (हैं)। और बाह्य (परिग्रह) लक्ष्मी, मकान, आबरू, कीर्ति आदि बाहर है। (बाह्य परिग्रह हैं)। ये सब पुण्य के फल जरूर हैं परन्तु हैं स्वयं पाप। अररर...! ऐसा कठिन लगे...!

इस पाप का जो स्वामी हो (अर्थात्) यह पाप मेरा है, पैसा मेरा है—ऐसे स्वामी बने, उसके लिये तीन लोक के नाथ का फरमान है कि वह पापी प्राणी है। ठीक लगे—न लगे, जगत को ठीक लगे—न लगे, इसके (साथ) कोई परमात्मा बँधे हुए नहीं है!! परमात्मा की वाणी में तो सत्य का प्रचार (आया है)। सत् क्या है—यही आता है। आहा...हा...हा...! दुनिया उसे पुण्यशाली कहें। वीतराग कहते हैं कि वह परिग्रह है; परिग्रह है, वह पाप है और जो पाप का स्वामी बने वह पापी है।

मुमुक्षु : तो फिर संसार में इसके बिना करना क्या हमें?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मेरा नहीं है, ऐसा भगवान! ऐसा मानना। ऐसे अन्तर में रुचि पलट देना।भाई! वह बाह्य चीज़ (है)—पर है। मेरी चीज़ पर है, वह चीज़ पर है। वह पर (चीज़) मेरी नहीं। पर को परमात्मा ने पाप कहा है। वह पाप मेरा नहीं। मैं तो आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसे इसे रुचि पलट देना प्रभु! आहा...हा...! भभूतमलजी! ये भभूतमलजी और सब करोड़पति हैं।

आहा...हा...! यह क्या है लेकिन बापू? करोड़पति! 'निर्जरा अधिकार' में लिया है। 'समयसार' में 'निर्जरा अधिकार' में यह अधिकार लिया है कि जो कोई प्राणी 'यह अजीव है, वह मेरा है'—ऐसा मानता है तो वह जीव, अजीव है—जीव नहीं। जेठालालभाई! कठिन

बात हैं, बापू! यह तो जगत से अलग बात है। 'निर्जरा अधिकार' में (आता) है। 'मैं अजीव हो जाऊँ' (आता) है? श्लोक है कि, यदि राग और लक्ष्मी मेरे हो और मेरे मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ! आहा...हा...हा...! कठिन बात है! पैसेवाले को पापी मानना!

मुमुक्षु : ऐसा सुनकर अन्तर में खलबलाहट होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खलबलाहट होती है! बात सही है, भगवान! अन्दर में खलबली हो जाती है (ऐसा कहते हैं)!

तीन लोक के नाथ की पुकार है। जिनेन्द्रदेव की इन्द्र और नरेन्द्र के बीच, चक्रवर्ती और बलदेव के बीच परमात्मा की यह पुकार है कि तेरे आत्मा के सिवा परपदार्थ जो अजीव हैं, 'यह अजीव है, वह मेरा है' ऐसा मानेगा तो तू अजीव है—जीव नहीं! भैंस का...! 'भैंस का स्वामी पाड़ा होता है।' भैंस का पति पाड़ा होता है। वैसे अजीव का स्वामी अजीव होता है। अजीव मेरा है – ऐसा मानेगा तो तू अजीव—जड़ है। (ऐसा) कहते हैं। और मान या न मान परन्तु वह वस्तु (तेरी नहीं है)। तेरी दृष्टि पर (ऊपर) है। आहा...हा...! वीतराग को कहाँ दरकार है जगत की, कि यह जगत को ठीक लगे, न लगे! मुनियों को कहाँ दरकार है जगत की! दिगम्बर सन्तों को कहाँ दरकार है जगत की! 'नागा ते बादशाहथी आघा।' बादशाह की भी जिनको परवाह नहीं है!! आहा...हा...हा...!

मैंने एकबार कहा नहीं था? वहाँ व्याख्यान सुनने दरबार आये थे, भावनगर दरबार! 19 मील हैं न? सोनगढ़ से भावनगर! एक साल की एक करोड़ की उपज है। करोड़ रुपये का राजा! सब व्याख्यान में तो आते हैं। जहाँ भी जाते हैं वहाँ के बड़े राजा हों, वे सब व्याख्यान में तो आते हैं। वढ़वाण, लखतर, राजकोट जहाँ भी जायें, वहाँ दरबार हों, वे व्याख्यान में तो आते हैं, एक बार तो आयें। एक बार तो सुनने आयेंगे ही!

वे दरबार व्याख्यान में आये थे, भावनगर दरबार...! एक करोड़ की आमदनी, उपज, हों...! राज्य बड़ा है, एक करोड़ की आमदनी (हैं)। (मैंने) कहा— दरबार! एक साल में एक लाख माँगे या दो लाख माँगे वह छोटा भिखारी है! और करोड़ माँगे, वह बड़ा भिखारी है!! हमको कहाँ उसके पास से पैसे की अपेक्षा थी कि राजा प्रसन्न हो जायेगा तो... बैठा था... सामने सुनता था! दो भाई आये थे। एक उसका छोटा भाई था। राजा और

राजकुमार दोनों सभा में आये थे। जो अधिक इच्छा रखता है, वह बड़ा भिखारी! थोड़ा माँगे, वह छोटा भिखारी! थोड़ा माँगे, वह छोटा भिखारी! अधिक माँगे, वह बड़ा भिखारी! माँगण अर्थात् भिखारी!! आहा...हा...!

(ऐसा कहा) परन्तु हमसे क्या कहे? यहाँ हमारे पास कुछ लेना-देना है? कि भाई वह प्रसन्न होवे तो चन्दा-वन्दा करो पैसे का....! सही बात महाराज! बेचारा ऐसे कहता था, हों! दरबार स्वयं (ऐसा कहता था)! उसका नाम क्या था? 'कृष्णकुमार।' वह तो गुजर गया बेचारा। उसका पुत्र है। भावनगर जाते हैं तो व्याख्यान में आता है। एकाध बार आवे, एकाध बार आवे। बाकी तो सिरपच्ची में पड़े और मर गये बेचारे! उसको कहा कि बड़ी... बड़ी... माँग करे, अधिक माँग करे वह बड़ा भिखारी!! वीतराग उसे – पाप के स्वामी को पापी कहते हैं। तथा पुण्य करे और पुण्य का स्वामी हो, तो वह पुण्य का स्वामी भी जड़ है!! क्योंकि पुण्य भी शुभभाव (है)। (यह शुभ) राग, चैतन्य के अभावस्वभाव है। राग को (अर्थात्) चैतन्य के अभावस्वभाव को अपना माने, वह अजीव हो जाता है। मान्यता में अजीव हो जाता है, हों! जीव पलटकर कोई अजीव नहीं हो जाता। आहा...हा...! कठिन बात है! आफ्रिका में नाईरोबी में ऐसी बात सुनना...! कठिन बात, भगवान!

हम तो पूरे काठियावाड़ में (घूमे हैं)। बड़े-बड़े शहर-कलकत्ता, दिल्ली सब जगह गये हैं। सब जगह हज़ारों लोग (आते हैं)। दो-दो हज़ार, पाँच-पाँच हज़ार, दस-दस हज़ार लोग सभा में होते हैं-आहा...हा...! यह बात तो रुचना, सुहाना, यह बहुत अलौकिक बात है!! यह वस्तु पर है।

यहाँ तो अबद्ध और ज्ञायक हूँ-ऐसा विकल्प भी दुःखरूप लगता है। आहा...हा...! पैसा, लक्ष्मी या आबरू या मणिरत्न के ढेर या सन्दूक भरे हो... मणिरत्नों के...! आहा...हा...! 'सरदार शहर' में एक दीपचन्दजी के मामा। सोना के सन्दूक भरे हैं। दस करोड़ तब कहते थे-बहुत महीने-वर्ष पहले। अभी तो उसकी कीमत बहुत बढ़ गयी। वे सब सोना और रत्न और मणिरत्न के सन्दूक भरे हों परन्तु (वे सब) भिखारी हैं। पर के माँगनेवाले (हैं), पर का माँगता है। यहाँ तो (कहते हैं) ज्ञायक और अबद्ध हूँ-ऐसा भी विकल्प करे तो वह दुःखरूप और विकारी है। आहा...हा...! भभूतमलजी! क्या करना यह? बैंगलोर में मन्दिर बनाने में इन्होंने आठ लाख रुपये दिये हैं, इन्होंने आठ लाख रुपये दिये हैं। पहले से कहा

था कि आठ या दस या बीस लाख जो हो वह। राग की ममता होवे तो पुण्य होगा धर्म नहीं। पहले से ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ये आठ के बत्तीस लाख हो गये, वह तो कहो। आठ लाख होवे तो उसके चालीस लाख हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पुण्य के कारण हुए हैं। यह बात सत्य है, ये यहाँ रहे, उसमें दो करोड़ का स्टील था, वह स्टील रह गया और यहाँ रुक गये और भाव बढ़ गया। आठ लाख खर्च किये और चालीस लाख बढ़े। यह तो पूर्व के पुण्य के योग से है। लोग ऐसा कहते हैं कि महाराज के नाम से आठ लाख खर्च किये और चालीस लाख हो गये। परन्तु उसे और इसे क्या सम्बन्ध है? यह तो पूर्व के पुण्य का योग आया उस समय अर्थात् चालीस लाख दिखाई दिये बाहर में। चालीस लाख क्या? करोड़ और दो करोड़ और पाँच करोड़ निकले अन्दर से। आहा...हा...!

श्वेताम्बर में एक नहीं कहते, क्या कहते हैं? वस्तुपाल और तेजपाल! करोड़ों रुपया (था)। (वे लोग) यात्रा करने निकले। कितने (रुपये थे)? कि अरबों रुपये! अपने मकान की जगह खाली होगी, वहाँ खड्डा करके गाढ़ने गये—वह ऐसे कि हमें बाहर जाना है और ये रुपये ऐसे खुले पड़े रहे (इसके बजाय) यहाँ (जमीन में) गाढ़ देते हैं। वे खोदने जाते हैं, वहाँ दूसरे करोड़ों ही करोड़ों रुपये निकले! अभी तो गाढ़ने गये तो करोड़ों निकले! पत्नियों ने कहा...! पत्नियों ने...! कि आप गाढ़ने गये तो भी इतने निकले (तो) आप गाढ़ते क्यों हो? यहाँ धर्म के नाम से खर्च करो न, तो पुण्य तो होगा। यह पाप तो तेरा एक तरफ रहा! आ...हा...हा...! पत्नी ने उसको कहा! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि अबद्ध और ज्ञायक (हूँ)—ऐसे विकल्प भी दुःखरूप लगे, आहा...हा...! तब इसे अन्तर स्वभावसन्मुख होने की दृष्टि जाती है। आहा...हा...! ऐसे तो कई जीव हैं। बहुत देखे... बहुत देखे हैं, पूरा काठियावाड़ (देखा है)। कई बड़े-बड़े राजा भी व्याख्यान में आते हैं। लखतर, वढ़वाण, सब जगह हम जायें, तब व्याख्यान में अवश्य आयें। सुना न हो कभी, परन्तु सुनकर बेचारों (को ऐसा लगे) यह क्या बात करते हैं यह महाराज! उनको कुछ लेना-देना नहीं है और यह क्या कहते हैं?

मार्ग यह है! देह छूटने पर जाना है कहीं न कहीं, (तो) कहाँ निवास करना है तुझे? देह तो छूट जायेगी। यह तो जड़ है—मिट्टी (है)। इसकी समय मर्यादा है। इस समय मर्यादा में एक समय भी बढ़े, ऐसा नहीं है। जितने दिन और महीने जा रहे हैं, वे सब मृत्यु के समीप जा रहे हैं। जो उसका—मृत्यु का नियम है—जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस प्रकार (देह छूटनी है), उसके समीप आयु जा रही है। वह उसके समीप जा रही है। 'माँ' कहती है कि बड़ा हुआ। प्रभु कहते हैं कि मृत्यु के समीप गया! अरे... अरे... यह बात! दुनिया से उलटी है!

यहाँ तो बहिन ऐसा कहते हैं कि तू 'अबद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ',... यहाँ तक आया हो तो भी वह विकल्प दुःखरूप है। आहा...हा...! शान्ति नहीं मिलती,... उस विकल्प में भी शान्ति नहीं है, प्रभु! आहा...! भगवान अन्दर शान्ति का सागर, आनन्द का सागर विराजमान है, उसे तू विकल्प से पकड़ने जायेगा, (तो ऐसे वह) पकड़ में नहीं आयेगा, प्रभु! आहा...हा...! शुभराग की वृत्ति है, वह दुःखरूप है (और) भगवान आनन्दरूप है, तो दुःख से आनन्द नहीं मिल सकेगा। आहा...हा...! दुःख से आनन्द मिले? दुःख का साधन राग और उससे निर्मल आनन्द मिलेगा? कहते हैं कि विकल्प है, वह दुःखरूप है, शान्ति नहीं मिलती। आहा...हा...! यहाँ तक आया तो भी कहते हैं कि शान्ति नहीं मिलती। अभी बाहर में भटकते हैं, उनकी तो बात ही क्या करना? वे तो दुःख के ढेर में पड़े हैं अभी!

विकल्पमात्र (में) दुःख ही दुःख भासता है,... धर्मी को तो आहा...हा...! अन्तर्मुख जाने में शान्ति का सागर भगवान आत्मा! अरे...! कैसे बैठे? बड़ा सागर—समुद्र हो, उसके किनारे गया हो और एक चार हाथ का...! क्या कहलाता है वह? पर्दा पड़ा हो। चार हाथ का पर्दा हो (तो) इसकी नज़र में वह पर्दा आयेगा। वस्तु—सागर नज़र नहीं आयेगा। चार हाथ का कपड़ा होगा तो आड़ में इसे वह पर्दा दिखेगा, वस्तु नहीं दिखेगी। वैसे अन्दर आनन्दसागर भगवान है, वह राग के पर्दे में यदि अटका तो उसे आत्मा नहीं ज्ञात होगा और दुःख ज्ञात होगा। आहा...हा...! ऐसी बात है। दुनिया को कठिन लगे! लेकिन क्या है, बापू! यह वस्तु है।

देह छूटने पर प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? यह देह तो छूट जायेगी। 25-50-60 वर्ष हुए, इतने तो फिर से अब निकलनेवाले हैं नहीं। 50-60 साल हुए, वे कोई (अब) निकलेंगे नहीं। थोड़ा समय है। कहाँ जाना है, बापू? आहा...हा...! यदि आत्मा में जाना हो तो विकल्प (में) दुःख लगना पड़ेगा। (फिर) विकल्प छोड़कर अन्दर में (जायेगा) तो (वहाँ) शान्ति मिलेगी। इसके बिना कहीं शान्ति मिले, ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है,... आहा...हा...! ज्ञानी को...! **तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर...** अपूर्व अर्थात् पूर्व में नहीं किया हो (ऐसा) पुरुषार्थ। अन्दर चेतन राजा दरबार बादशाह विराजमान है। आहा...हा...! उससे भेंट करनी है। विकल्प के दुःख को छोड़कर अन्दर में जायेगा तो उसकी भेंट इसे होगी। बाह्य विकल्प से उसकी भेंट नहीं होगी। आहा...हा...! यहाँ (तो) दगा, प्रपंच और... आहा...हा...! पैसे के लिये दगा, प्रपंच, क्लेश, कपट, माया, कुटिलता... आहा...हा...! प्रभु! उसके दुःख की तो सीमा नहीं, परन्तु ज्ञायक के लिये भी यदि विकल्प उठाया (तो) वह (भी) दुःख है।

वही (यहाँ कहते हैं) **अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर...** (अर्थात्) इस विकल्प का पुरुषार्थ भी छोड़कर, आहा...हा...! ज्ञान तो करे, जानकारी तो करे कि मार्ग यह है। सुने बिना तो मार्ग का पता भी न चले, यूँ ही जगत चला जा रहा है। आहा...हा...! **तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...** आहा...हा...! अबद्ध और ज्ञायक की वृत्ति उठती है, वह भी विकल्प-राग है, दुःख है। प्रभु तो अमृत का सागर आनन्द है। यह अमृत किसी को मारता नहीं, अमृत किसी से मरता नहीं। आहा...! यह अमृत का सागर भगवान अन्दर पड़ा है, डोल रहा (है)। परन्तु वहाँ नज़र किये बिना निधान दिखता नहीं है। इसकी ओर नज़र किये बिना निधान पड़ा हुआ दिखता नहीं है। वस्तु यूँ सामने हो लेकिन उस पर नज़र न करे तो दिखती नहीं। वैसे अन्दर भगवान आत्मा आबालगोपाल को (अनुभव में आ ही रहा है)। वह 17-18 गाथा में आयेगा। इस में तो (अभी) 15 वीं लेनी है न? 14 वीं के बाद 15 वीं, इसके बाद 17-18 गाथा है, उसमें आता है। आबाल-गोपाल! उसमें ऐसा लिया है। 17-18 वांचन में (लेनी है-ऐसा तुमने) लिखा है।

वहाँ ऐसा लिया है। आबाल-गोपाल – बालक से लेकर वृद्ध सब को उसकी ज्ञान

की पर्याय में आत्मा जानने में आता है। अज्ञानी को भी ज्ञान की पर्याय में आत्मा ज्ञात होता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। 17-18 गाथा में आयेगा। यह ज्ञान की पर्याय—दशा जो है, उसका स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने से, उस ज्ञान की पर्याय में प्रभु जानने में आता है परन्तु तेरी नज़र वहाँ नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? ज्ञान की जो पर्याय है न! यह विचार— जो व्यक्त ज्ञान (है)। जानने की जो प्रगट-प्रगट पर्याय है न! उस पर्याय का स्वभाव स्व-पर जानने का है। भगवान त्रिलोकनाथ की पुकार है कि इस अज्ञानी की ज्ञानपर्याय भी आत्मा को जानती है। अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय भी त्रिकाली—त्रिलोकीनाथ आत्मा को जानती है। फिर भी उसकी नज़र वहाँ नहीं है, इसलिए पर्याय में अटककर, राग में रुककर, जो चीज़ नज़र के सामने पड़ी है, उसे देखता नहीं है। आहा...हा...! कठिन बात है! यह तो एकदम तीव्र पुरुषार्थ उठाये तो यह काम चले, ऐसा है। साधारण पुरुषार्थ से यह काम चले — ऐसा नहीं है। आहा...हा...हा...!

यहाँ तो धर्म की बात है, प्रभु! जिससे भव कम हो व भव का नाश हो यह बात है। भव करेगा तो निगोद में जायेगा। आहा...हा...! पहले कहा न? त्रस में रहेगा तो 2000 सागर रहेगा। यह निगोद में से—एकेन्द्रिय में से बाहर आया है न! वह बाहर में 2000 सागर रहेगा। ये 2000 सागर यदि इसी ममता और ममता में ही पूरे हुए (तो) फिर से निगोद में जायेगा। ये लहसुन और प्याज में जायेगा! आ...हा...हा...! पण्डितजी! आया है न? आपके क्रमबद्ध में आया है। दो हज़ार सागर (की) त्रस (की स्थिति) में मनुष्य के भव करे तो 48 (भव) करे। मनुष्य का भव एक के बाद एक करे तो ऐसे आठ करे। मनुष्य मरकर मनुष्य, मनुष्य मरकर मनुष्य — इस प्रकार करे तो आठ भव करे — ऐसा शास्त्र में पाठ है। ऐसे आठ भव अनन्त बार हो चुके। अनन्त बार...! परन्तु 2000 सागर की जो त्रस की स्थिति है, त्रस में 2000 (सागर) रहता है, इसमें भी 8-8 मनुष्य के भव करते हुए, 6 बार, 8-8 अर्थात् 48 भव करे। समझ में आया? क्या कहा यह?

एकेन्द्रिय से निकलकर जहाँ पंचेन्द्रिय (में) आया है, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, ऐसे 2000 सागर तक रहेगा। फिर (त्रस में से) निकलकर एकेन्द्रिय में जायेगा। इसमें कहते हैं कि 2000 सागर में मनुष्य के भव लगाताररूप से किये तो 8 किये और ऐसे

8 भी 6 बार किये (अर्थात्) 48 किये। परन्तु आत्मा का (हित) किया नहीं। 48 भव 2000 सागर के अन्दर किये!! आहा...हा...! 2000 सागर में भी असंख्य अरब वर्ष हैं। उसमें 48 बार मनुष्य हुआ है। (ऐसा) कहते हैं। लगातार होवे तो 8 बार (होते हैं)। लेकिन 8 बार होकर फिर से दूसरे में जाता है—नरक-तिर्यच में जाता है, फिर से मनुष्य होवे—ऐसे भव करे तो पूरे 2000 सागर में (मनुष्य के) 48 भव करता है। फिर मरकर निगोद या नरक में जायेगा। आहा...हा...! यदि इसने आत्मा का काम नहीं किया, अरेरे...! यदि अपनी गति नहीं सुधारी (तो फिर से निगोद में जायेगा)।

यहाँ यह कहते हैं कि अपूर्व पुरुषार्थ जागृत कर! वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,... आहा...हा...! भगवान आत्मा! उसका—वस्तु का स्वभाव जो है—ज्ञान, दर्शन और आनन्द, उसमें लीनता होने पर, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं... आहा...हा...! इस पंचम काल में सब अवसर आ चुका है—सब अवसर आ मिला है। उसमें यह जो नहीं किया, विकल्प तोड़ा नहीं और निर्विकल्पदृष्टि करेगा नहीं तो उसका छुटकारा कभी नहीं आयेगा।

वही यहाँ कहते हैं, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं... आहा...हा...! ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, पूर्ण हूँ, पवित्रता का पिण्ड हूँ—ऐसा भी एक विकल्प अर्थात् राग, वह भी दुःखरूप है। आहा...हा...! तो बाह्य चीजों के लिये उत्पन्न हुए राग-द्वेष की बात तो क्या करे? वह तो दुःख का सागर है, बापू! आहा...हा...! अन्दर में ज्ञायक और अबद्ध आदि का विकल्प भी दुःखरूप है। इसलिए सब विकल्प छूट जाते हैं। और आनन्द का वेदन होता है। तब उसको सम्यग्दर्शन होता है। आहा...!

सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या? ऐसा कोई भाई पूछते थे। 'चिमनभाई', 'कनुभाई' के भाई 'चिमनभाई' पूछते थे कि भाई! सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या? सम्यग्दर्शन अर्थात् अन्तर (आत्मा का) अनुभव करना। राग छोड़कर, विकल्प छोड़कर चैतन्य का अनुभव करना और उसमें प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन (है)। मैं परमात्मस्वरूप हूँ, मैं ज्ञाता—दृष्टा हूँ, मेरे स्वभाव में विकल्प और अल्पता है नहीं। विकल्प और अल्पता है नहीं (ऐसा कहा)। आहा...हा...! ऐसे पूर्ण स्वभाव की अन्तर में विकल्प रहित प्रतीति होना, उसको

यहाँ सच्ची श्रद्धा और सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी—शुरुआत कहते हैं। आहा...हा...! बाहर भटककर बाहर से कुछ मान लेता है। जहाँ जाना है, वहाँ जाता नहीं और बाहर में भटकता रहता है। आहा...हा...!

और आनन्द का वेदन होता है। विकल्प सब छूट जाये तो भगवान में आनन्द है, उसका वेदन होता है। तब उसको धर्म की दशा होती है। तब वह प्राणी भव का अन्त करके मुक्ति को पाता है। इसके बिना भव का अन्त आता नहीं। आहा...हा...! यह 37 वाँ (हुआ)।

आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु सद्गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आये ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है ॥38 ॥

(अब) 38 (वाँ बोल)। आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है... पैसे की प्राप्ति का और पत्नी की प्राप्ति का या आबरू पाने का, यह (बात) नहीं। आहा...हा...! आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी... आ..हा...हा...! शरीर में रोग आये! देखो न! उस दो जगह... आज आये थे न? वे 'झवेरचन्दभाई' दस वर्ष से, 'चन्द्रिकाबेन' उनके यहाँ गये तो (एक भाई के वहाँ गये वहाँ) बेचारे रोने लगे। आँखों से आँसू गिरने लगे। आज एक भाई आये थे। मेघजीभाई! ऐसे शरीर हो जाते हैं। काम कर सके नहीं, आत्मा का कर सके नहीं और बाहर का कर सके नहीं। आहा...हा...! ऐसे भव भी अनन्त हुए हैं। यह भव पहला नहीं, ऐसे तो अनन्त बार हुए हैं।

इसलिए (यहाँ कहते हैं) आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है... (अर्थात्) मुझे तो आत्मा चाहिए और कुछ नहीं चाहिए। आहा...हा...! उसे प्रतिकूल संयोगों में (अर्थात्) शरीर (में) आहा...हा...! पक्षघात हो, रोग हो, दिमाग फिर जाये—ऐसे प्रतिकूल संयोगों में भी, आहा...हा...! तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ... करना चाहिए। कठिन अर्थात् कठोर। आहा...हा...! गुजराती भाषा है न! कठिन (अर्थात्) तीव्र (कठोर)

पुरुषार्थ करना है। वह करना ही पड़ेगा। है न? कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। चाहे जैसी प्रतिकूलता हो! जगत में निन्दा हो, प्रतिकूलता हो, शरीर में रोग हो, क्षय रोग लागू पड़े, (वह) शरीर को (लागू) पड़ता है। इसे तीव्र पुरुषार्थ करके आत्मा में जाना। उसे पाने का यह उपाय है, अन्य कोई उपाय है नहीं, आहा...! ऐसा तीव्र पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।

सच्चा मुमुक्षु सद्गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आये ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके... धर्मात्मा के वचन बहुत गम्भीर होते हैं, गहरे होते हैं। धर्मी जीव (के) रहस्यों से भरपूर वाक्यों का सच्चा मुमुक्षु बहुत गहरा मन्थन करके मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है। आ...हा...हा...!

अन्तर में चैतन्य भगवान जागृत ज्योत पड़ी है! परमेश्वर स्वरूप है। 38 वीं गाथा में कहा है न? 38 गाथा। वह अपने परमेश्वर को भूल गया। अन्य परमेश्वर के पीछे लगा – भगवान को, तीर्थंकर को, परन्तु वे तो पर हैं। पर का अवलम्बन लिया कि वहाँ राग है। आ...हा...हा...! अपने परमेश्वर को भूल गया और दूसरे परमेश्वर की महिमा मानकर वहीं अटक गया। आहा...!

यहाँ कहते हैं कि धर्मात्मा के (वस्तुस्वरूप को) समझायें ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके... (ऐसा कहते हैं)। खूब गहरा मन्थन करके... आहा...हा...! अन्दर में जाने का तीव्र पुरुषार्थ करके! ये बहिन के अन्दर के वचन हैं न! मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है। अन्दर में बहुत मन्थन करके, विकल्प से रहित होकर प्रभु को ढूँढ़ निकालता है। यह भगवान चैतन्य आनन्दमूर्ति है। ऐसे समकिति, ऐसे धर्म की पहली सीढ़ीवाला, विकल्प को तोड़कर सम्पूर्ण को प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण ऐसा आत्मतत्त्व—उसे प्राप्त कर लेता है। वह प्राप्त कर लेता है वह आत्मा है, वह समकिति है, वह सच्ची श्रद्धावाला है। वह मोक्ष के मार्ग पर है। वह संसार के अन्त में आ गया है। उसके संसार का अन्त—भव का अन्त आ गया है। आहा...हा...!

अटकने के साधन अनन्त; छूटने का साधन एक। यह क्या कहा? बाहर में अटकने के साधन अनन्त। राग, द्वेष, पुण्य और शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, आबरू-कीर्ति, बेटा, बेटा, बहू और ...बड़ी पलटन! (ऐसे) बाहर में अटकने के (स्थान

हैं)। रायचन्द्र भाई को तो कहाँ कोई है, पति-पत्नी दो ही हैं, बस! बहुत सारे बच्चे हो, फिर उसकी बहुएँ, फिर उसके बच्चे... ऐसे अटकने के साधन बहुत, प्रभु! छूटने का साधन एक। इस चैतन्यमूर्ति भगवान तरफ जाना, यह छूटने का एक साधन। आहा...हा...! मार्ग यह है। इस मार्ग का ख्याल तो करे, प्रभु! आहा...हा...! बहुतों को देखा है—करोड़पतियों को, अरबपतियों को, आहा...! परन्तु बेचारों (को) कुछ समझ नहीं। दिमाग में समझ न पड़ती। कहा नहीं था?

अभी, मुम्बई में एक वैष्णव आया था। पचास करोड़ रुपये! दर्शन करने आया था। वैष्णव (था) और घर में बहुएँ सब अपनी जैन, श्वेताम्बर जैन की लड़कियाँ और जितने आदमी (वे) सब वैष्णव, पचास करोड़। दर्शन करने आया था (तब कहा) 'महाराज!' वे लोग कर्ता मानते हैं न विष्णु को? 'परमेश्वर कर्ता है या नहीं?' (मैंने कहा) "प्रभु! 'नरसिंह महेता' ने कहा है कि, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी...' ... आत्मा को न जाने, तब तक सब मिथ्या भ्रम है।

जुनागढ़ में वैष्णव में एक 'नरसिंह महेता' हो गये। 'नरसिंह महेतो, भगत हरिना, जुनागढ़ ना रहेवासी' (ऐसे) आता है, बड़ी कथा आती है। वे ऐसा कहते (हैं) कि, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहीं' – जब तक अन्तर में आत्मा को जानने का प्रयत्न नहीं किया, उसे पहचाना नहीं, तब तक इसने 'शुं कर्तुं तीर्थ ने तप करवा थकी?' 'शुं कर्तुं जात्रा ने दान करवा थकी?' इससे कोई आत्मा प्राप्त हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहा...हा...!

यहाँ यह कहते हैं कि, (सच्चा मुमुक्षु) गहरा मन्थन करके मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है। आहा...हा...! यह ३८ (हुआ)।

सहज दशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। यदि विकल्प करके बनाये रखना पड़े तो वह सहज दशा ही नहीं है। तथा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है, जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है ॥३९॥

39 (बोल) सहज दशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। क्या कहते हैं? यह आत्मा अन्दर में राग रहित, विकल्प की वृत्ति रहित है—ऐसा जानने में आया, उसे फिर से अब कोई भेद करना पड़ता नहीं। भेदज्ञान निरन्तर चलता ही रहता है। भले खाता हो, पीता हो, बोलता हो, परन्तु अन्तर में राग से भिन्न हो चुका है, ऐसा भेदज्ञान सदा निरन्तर रहा ही करता है। है (अन्दर)? सहज दशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। राग से भिन्न पड़ा है—ऐसा जो भगवान! इसका जिसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, उसे विकल्प करके (दशा को) बनाये रखनी नहीं (पड़ती)। यदि विकल्प करके बनाये रखनी पड़े फिर तो वह सहज दशा ही नहीं है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात है।

राग करके (दशा बनाये रखनी पड़े तो) वह सहज दशा ही नहीं है। सहज दशा! आनन्द स्वरूप भगवान, राग से भिन्न पड़ा, उसे सहज दशा हुई है। उसे अब राग को भिन्न करने का नया प्रयत्न करना नहीं पड़ता। भिन्न कर दिया, वह अब भिन्न हुआ ही करता है। आहा...हा...! ऐसी बातें अब! साधारण समाज! प्रभु! समाज साधारण है, आत्मा साधारण नहीं है। आत्मा तो बड़ा भगवान है!

सुबह कहा नहीं था? कि धर्मध्यान का विचार करनेवाला अपायवाला ऐसे विचार करता है..! 'द्रव्यसंग्रह' में है। 'द्रव्यसंग्रह' लाये हो? है इसमें 'अपाय', 'अपाय' का निकालिये...! उसमें धर्मध्यान का अपाय का विचार है। हमें तो हजारों ग्रन्थों का स्वाध्याय है न! हजारों! करोड़ों श्लोक...! उसमें एक लेख है—धर्मध्यान का! अपायविचय—समकृती राग से भिन्न होकर जब आत्मा का विचार करता है, 'अपाय' अर्थात् विचार करता है—'मैं शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द हूँ और मैं अब पूर्ण होना चाहता हूँ, मेरी दशा अब सिद्ध होनेवाली है। मेरी तो होनेवाली है, परन्तु वह करुणा से ऐसा विचार करता है कि '**सभी आत्माएँ भगवान होओ!!!**' आहा...! ऐसा है। अन्दर देखो! धर्मध्यान है।

इसी तरह वीतरागी रत्नत्रय की भावना के बल से हमारे अथवा अन्य जीवों के कर्मों का नाश कब हो? उस प्रकार का चिन्तन उसे अपायविचय कहते हैं। कोई प्राणी भटके और दुःखी हो — ऐसा विचार धर्मी नहीं करता। आहा...हा...! है? हमारे और दूसरे जीवों के कर्मों का नाश कब हो? इस प्रकार का चिन्तन अपायविचय नाम का दूसरा धर्मध्यान

जानना। 'द्रव्यसंग्रह' है। छह द्रव्यों की व्याख्या है, उसमें धर्मध्यान के 'अपाय' बोल की व्याख्या है।

हम भी चैतन्यप्रभु हैं। हम भी पूर्ण परमात्मा होनेवाले हैं और सभी आत्माएँ पूर्ण होओ! भगवन्त होओ! ऐसी भावना धर्मी को होती है। कोई प्राणी दुःखी हो व भटकता रहे, आहा...हा...! ऐसे विचार की भावना धर्मी को नहीं होती। ऐसा यहाँ है। गाथा है। कौन-सी गाथा है? 48 वीं गाथा है। 48 गाथा 'द्रव्यसंग्रह!' क्या कहा समझ में आया इसमें? आहा...!

राग से भिन्न होकर धर्मध्यान—आत्मा के विचार की धारा बहती है, तब धर्मी ऐसा विचार करता है कि मैं अब पूर्ण होनेवाला हूँ, परमात्मा होनेवाला हूँ! भले ही एक-दो भव करने पड़े परन्तु अन्त में मेरी दशा सिद्ध होनेवाली ही है! मैं तो सिद्ध होऊँगा, परन्तु सर्व जीव कर्मों का नाश करके सिद्ध होओ! आहा...हा...हा...! ऐसा लेख है। चन्दुभाई! सर्व जीव...! आहा...हा...! धर्मध्यान का दूसरा बोल! आर्त्त (ध्यान), रौद्र ध्यान है, वह छोड़नेयोग्य है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान आदरणीय है। धर्मध्यान पहले नम्बर आदरणीय है। शुक्लध्यान सर्वथा आदरणीय है। उस धर्मध्यान के अपाय का यह बोल है। आहा...हा...!

मैं भी अल्पकाल में परमात्मा होनेवाला हूँ, यह निश्चित है—ऐसा धर्मी अन्दर में विचार करता है। परन्तु अन्य सर्व प्राणी भी कर्मों का नाश करके परमात्मा होओ!! आहा...हा...हा...! देखो! यह धर्मध्यान का विचार! किसी भी प्राणी के प्रति वैरबुद्धि नहीं है, किसी प्राणी के प्रति शत्रुबुद्धि नहीं है, किसी प्राणी के प्रति अल्प-हलकी बुद्धि नहीं है। उसका जो द्रव्यस्वभाव है, उस पर दृष्टि है कि यह उसका द्रव्यस्वभाव है। उसे पकड़कर वह भी मुक्ति को प्राप्त हो!! आ...हा...हा...हा...! बोलो, भगवानजीभाई! यह भावना...! धर्मी की ऐसी भावना होती है। धर्मी को कोई दुश्मन नहीं होता, धर्मी को कोई बैरी-शत्रु नहीं होता। जो बैरी-शत्रु मानता हो, उसकी भी मुक्ति हो जाओ!! वह भी बन्धन और दुःख से छूट जाओ!! ऐसी धर्मी की भावना अपाय अर्थात् विचारधारा से चलती रहती है। आहा...हा...!

वही यहाँ कहा, (सहज दशा को) विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। (ऐसी) सहज दशा है। तथा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ

नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है... (बढ़ने का पुरुषार्थ) चलता ही है। क्या कहते हैं? जहाँ राग से भिन्न होकर यह भेदज्ञान हुआ, वह भेदज्ञान (की) धारा तो निरन्तर चलती ही रहती है। इसके लिये नया पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता। पुरुषार्थ, स्वभाव की ओर झुका हुआ है ही। पुरुषार्थ, स्वभाव के प्रति झुका है ही, वह झुका हुआ पुरुषार्थ बढ़ता ही जाता है। वह अन्तर में राग हो उसे जानता है, परन्तु राग में अटकता नहीं। ऐसी धर्मध्यान की धारा... आहा...हा...! प्रगट हो!—जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है। अन्तर में बढ़ने से, राग से भिन्न होकर, स्वभावसन्मुख की दशा के कारण नया पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता। उसमें दशा वृद्धिगत होती रहती है। वह दशा तो सहज बनी रहती है। सहज स्वभाव टिका रहता है। इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान और उसे धर्मी की दशा कहने में आती है। उसके भव का अन्त हो जायेगा और दूसरे के भव का अन्त हो—ऐसी भावना करेगा, उसे यहाँ धर्मी कहने में आता है।

(विशेष कहेंगे...)

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)